R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-21, अङ्क-3 मार्च 2021 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

मार्च का E - अंक

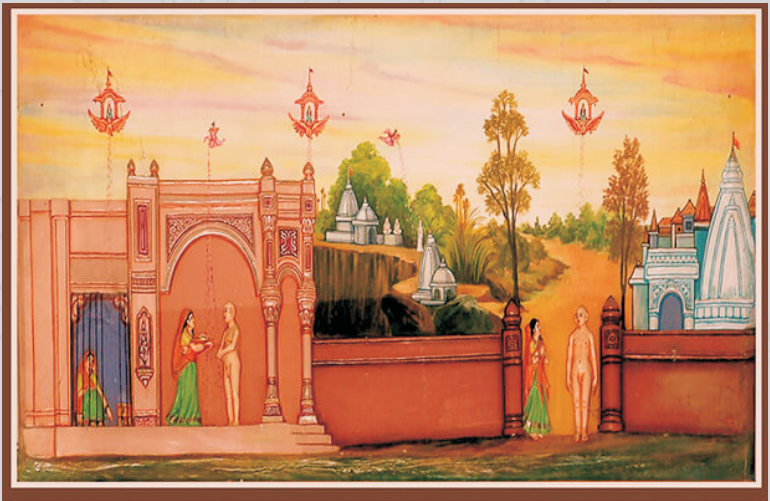

← महासती चन्दनबाला

एक दिन महासती चन्दना वनक्रीड़ा कर रही थी। तब मनोवेग नामक विद्याधर ने मोहित होकर उसका अपहरण कर लिया, परन्तु पत्नी के भय से उसने चन्दना को भयानक वन में छोड़ दिया। अनेक स्थानों पर भटकती हुई चन्दना सेठ वृषभदत्त के पास पहुँच जाती है। सेठ उसे पुत्री के समान प्रेम करता है, किन्तु सेठानी को भ्रम के कारण यह सहन नहीं होता। सेठानी, चन्दना का सिर मुड़ाकर, बेड़ी पहनाकर, कारागृह में बन्द करा देती है। कुछ दिन बाद चन्दना के भाग्योदय से मुनिराज महावीर, आहार के लिये वहाँ पधारते हैं। चन्दना उन्हें अपने हाथों से आहार देना चाहती है। सौभाग्य से उसके बन्धन खुल जाते हैं। और वह मुनिराज महावीर को विधिपूर्वक आहार देती है। आहारदान के महाप्रभाव से देवगण पञ्चाश्चर्य करते हैं। बाद में सती चन्दना, भगवान के समवसरण में जाकर आर्यिका दीक्षा धारण कर लेती है।

धन्य हो गयी स्त्री पर्याय!!

2

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन सत्र 21-22 प्रवेश प्रारंभ

(फार्म जमा करने की अन्तिम तिथि - 20 मार्च 2021;
01 अप्रेल से 04 अप्रेल 2021 प्रवेश साक्षात्कार शिविर)

सद्धर्म प्रेमी बन्धुवर सादर जयजिनेन्द्र,

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन मङ्गलायतन में प्रवेश प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। वर्तमान युग में अपने कोमलमति बालक और युवाओं में धर्म, संस्कार एवं नैतिक शिक्षा के साथ उच्च शिक्षा देना चाहते हो तो अवश्य ही 20 मार्च 2021 तक अपने प्रवेश फार्म मङ्गलायतन ऑफिस में जमा करायें।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन लगातार उन्नति के शिखर को छू रहा है। यहाँ से निकले मङ्गलार्थी उच्च स्तर की प्रशासनिक एवं राष्ट्रीय सेवाएँ देते हुए समाज को तत्त्वज्ञान की शिक्षा दे रहे हैं। स्व-पर कल्याण करते हुए वीतरागी जिनमार्ग को घर-घर पहुँचा रहे हैं।

यदि आप भी चाहते हैं कि आज की पीढ़ी पाप के दलदल में न फँसे, सन्तोषपूर्वक आत्मकल्याण करते हुए अपना जीवन सफल करे तो अवश्य ही भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में अपने बालकों का प्रवेश करायें।

प्रवेश के योग्य अभ्यार्थी की पात्रता

(1) सातवीं कक्षा में कम से कम 60 प्रतिशत अंक से पास हो। (2) फार्म भरते समय छठी कक्षा में भी कम से कम 60 प्रतिशत अंक हों। (3) सातवीं कक्षा में अंग्रेजी माध्यम से ही पढ़ता हो। (4) शरीर में कोई असाध्य रोग न हो। (5) जैन धर्मानुसार अभक्ष्य भक्षण नहीं करता हो। (6) जैन धर्म पढ़ने की रुचि रखता हो।

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन की विशेषताएँ

(1) पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा उद्घाटित वीतरागी तत्त्वज्ञान का गहरा अध्ययन। (2) धार्मिक, नैतिक, सांस्कारिक, सामाजिक, लौकिक, पारलौकिक, आध्यात्मिक, सैद्धांतिक आदि विद्याध्ययन करने का अवसर। (3) भारत के उच्चतम स्कूल डी.पी.एस. में पढ़ने का अवसर। (4) विश्व के प्रसिद्ध विद्वानों से अध्ययन करने का अवसर। (5) चहुँमुखी प्रतिभा एवं विकास के साधन (6) डी.पी.एस. के माध्यम से विश्वस्तरीय खेल, प्रतिस्पर्धा एवं व्यक्तित्व विकास का अवसर। (7) खेल एवं संगीत शिक्षा की विशेष व्यवस्था। (8) मङ्गलायतन द्वारा देश-विदेश में तत्त्वज्ञान आराधना / प्रभावना करने का अवसर। (9) आगामी उच्चस्तरीय शिक्षा की पूर्व में ही विशेष कोचिंग की व्यवस्था। (10) आत्मसम्मान एवं जिनधर्म की शिक्षापूर्वक उच्च आजीविका का अवसर।

शीघ्र ही आप अपने बालकों का फार्म भरकर, तीर्थधाम मङ्गलायतन के पते पर कोरियर द्वारा 1000 रुपये के ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

कोरियर भेजने का पता — भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, तीर्थधाम मङ्गलायतन
द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरा रोड, अलीगढ़ - 202001 (उ.प्र.)
मोबा : 9997996346, 9756633800

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-21, अङ्क-3 (वी.नि.सं. 2547; वि.सं. 2077) मार्च 2021

होली खेलें मुनिराज....

होली खेलें मुनिराज शिखर वन में
रे अकेले वन में, मधुवन में
मधुवन में आज मची रे होली मधुवन में..... ॥ टेक ॥

चैतन्य गुफा में मुनिवर बसते, अनन्त गुणों में केली करते
एक ही ध्यान रमायें वन में, मधुवन में..... ॥1 ॥

ध्रुवधाम ध्येय की धूनी लगाई, ध्यान की धधकती अग्नि जलाई
विभाव का ईधन जलावें वन में, मधुवन में..... ॥2 ॥

अक्षय घट भरपूर हमारा, अन्दर बहती अमृत धारा
पतली धार न भायी मन में, मधुवन में..... ॥3 ॥

हमें तो पूर्ण दशा ही चहिए, सादि अनंत का आनंद लहिये
निर्मल भावना भायी वन में, मधुवन में..... ॥4 ॥

पिता झलक ज्यों पुत्र में दिखती, जिनेन्द्र झलक मुनिराज चमकती
श्रेणी माँडी पलक छिन में, मधुवन में..... ॥5 ॥

नेमिनाथ गिरनार में देखो, शत्रुंजय पर पाण्डव देखो
केवलज्ञान लियो है छिन में, मधुवन में..... ॥6 ॥

बार-बार वन्दन हम करते, शीश चरण में उनके धरते
भव से पार लगाये वन में, मधुवन में..... ॥7 ॥

ऐसी होली हम हूँ खेले, निज आतम को हम हूँ देखें।
ज्ञान में ज्ञान रमायो पल में, मधुवन में ॥8 ॥

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में
सहयोग-
स्व. श्री सुमतिचन्द्र एवं
माता श्रीमती इन्द्राणी देवी
की स्मृति में श्रीयुत अजय,
विजय, रतन, पवन जैन
मुम्बई-दिल्ली-हाथरस

क्या - कहाँ

दर्शनशुद्धिपूर्वक श्रावक की	5
मोक्षमार्ग का उद्घाटन	14
समयसार नाटक प्रवचन	18
आचार्यदेव परिचय	29
समाचार-दर्शन	33

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

दर्शनशुद्धिपूर्वक श्रावक की –

ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन

(पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन)

सर्वप्रथम चौथे गुणस्थान में दर्शनविशुद्धि होती है, तत्पश्चात् ही पांचवें गुणस्थान में दर्शनप्रतिमा आदि ग्यारह प्रतिमाएँ होती हैं, वे प्रतिमाएँ अंतर के गुण के विकास अनुसार होती हैं, बाह्यक्रियानुसार नहीं होती। श्रावकों के ग्यारह पद हैं, उनमें समस्त श्रावकों को अंतर में आत्मा का भान होता है और उसमें अंशत: स्थिरतारूप रत्नत्रय की भक्ति होती है। इसके बिना श्रावक की एक भी प्रतिमा नहीं होती।

एकादशपदी श्रावकों में जघन्य छह, मध्यम तीन और उत्तम दो हैं – यह सब शुद्ध रत्नत्रय की भक्ति करते हैं। श्रावकों के ग्यारह भेद हैं अर्थात् ग्यारह प्रतिमाएँ हैं, वह प्रत्येक सम्यग्दर्शन –ज्ञानपूर्वक ही होती है। यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि समस्त श्रावक भी शुद्ध रत्नत्रय की भक्ति–आराधना करते हैं। जितनी सम्यग्दर्शन–ज्ञानपूर्वक वीतरागता है, उतनी शुद्ध रत्नत्रय की भक्ति है और उतना श्रावक का धर्म है। जो राग है, वह कहीं श्रावक का धर्म नहीं है। एक से लेकर ग्यारह प्रतिमावाले श्रावक क्या करते हैं। शुद्ध रत्नत्रय की भक्ति करते हैं। स्वभाव के आश्रय से जितनी रत्नत्रय की आराधना करें, उतना ही धर्म है।

यह नियमसार भागवत् शास्त्र है, इस समय इस भागवत् शास्त्र का भक्ति अधिकार चल रहा है। जिससे श्रावकों को या श्रमणों को मुक्ति प्राप्त हो, ऐसी सच्ची भक्ति किसे कहते हैं ? वह यहाँ आचार्यदेव बतलाते हैं। मुनिवरों या गृहस्थ श्रावकों को भी अपने शुद्ध परमात्मतत्त्व के श्रद्धा–ज्ञान–चारित्ररूप शुद्ध रत्नत्रय का जो भजन, वही भक्ति है। रत्नत्रय की भक्ति कहो या रत्नत्रय की आराधना कहो, वह मुक्ति का कारण है।

प्रथम शुद्ध आत्मा का निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, वह भी भक्ति है। मैं तो शुद्ध चिदानन्द हूँ, राग का एक अंश भी मेरा नहीं है – ऐसा यथार्थ भान करके शुद्ध आत्मा की आराधना करना, सो परम भक्ति है। शुद्ध परमात्मतत्त्व का सम्यक् भान होने के पश्चात् उसमें अंशत: स्थिरता द्वारा रत्नत्रय की आराधना करनेवाले श्रावकों को ग्यारह भूमिकाएँ हैं, उसमें एक से छह प्रतिमा तक के जघन्य श्रावक हैं, सात से नव प्रतिमा तक के मध्यम श्रावक हैं और अन्तिम दो प्रतिमा वाले उत्तम श्रावक हैं। परन्तु यह समस्त पद शुद्ध परमात्मतत्त्व के श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक ही होते हैं, क्योंकि प्रतिमा तो पाँचवें गुणस्थान में होती है और दर्शनविशुद्धि तो चौथे गुणस्थान में होती है। शुद्ध आत्मा के भान से दर्शनशुद्धि हुए बिना तो चौथा गुणस्थान भी नहीं होता, तो फिर पाँचवें गुणस्थान का श्रावकत्व या प्रतिमा तो होगी ही कहाँ से ? दर्शनविशुद्धि के पश्चात् आत्म-स्वभाव का अवलम्बन ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों त्यों गुणानुसार श्रावक की ग्यारह भूमिकाएँ होती हैं। अंतर में अखण्डानंद परिपूर्ण परमात्मस्वभाव की श्रद्धा के पश्चात् उसमें जितनी रमणता हो, उतने अंश में प्रतिमा आदि होते हैं। स्वभाव के अवलम्बन से ज्यों ज्यों शुद्धता बढ़ती जाती है, त्यों त्यों राग छूटता जाता है और तदनुसार राग के निमित्तों के साथ का संबंध भी सहजरूप से छूटता जाता है। अंतर की शुद्धता के अतिरिक्त बाह्य क्रियाकाण्ड में या राग में धर्म मान ले, उसे तो मिथ्यात्व है, उसे एक भी प्रतिमा नहीं होती। अंतर की शुद्धपरिणतिपूर्वक शुभराग हो, उसे तो व्यवहार से प्रतिमा कहा जाता है, किन्तु जो अंतर की शुद्ध परिणति रहित शुभराग है, उसे तो व्यवहार प्रतिमा भी नहीं कहा जाता।

यह खास ध्यान रखना चाहिए कि श्रावकों के जो ग्यारह पद हैं, वे सब सम्यक्त्वपूर्वक हठ रहित सहजदशा है। दर्शनविशुद्धिपूर्वक श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप इसप्रकार है –

1. दर्शनप्रतिमा – यह पाँचवें गुणस्थानवाले श्रावक की बात है,

दर्शनविशुद्धि तो चौथे गुणस्थान में होती है और यह दर्शनप्रतिमा पाँचवें गुणस्थान में होती है, इस प्रतिमावाले श्रावक को मद्य, मांस, मदिरा आदि के त्यागरूप अष्ट मूलगुण प्रतिज्ञापूर्वक होते हैं, स्वभाव के आश्रय में उसे इतनी शुद्धता प्रगट हो गई है कि वहाँ उसप्रकार का राग होता ही नहीं। दर्शनशुद्धिपूर्वक ऐसी दशा प्रगट हो, उसका नाम पहली प्रतिमा है।

2. व्रत प्रतिमा – चैतन्य के भानपूर्वक उसमें लीनता की वृद्धि होने से श्रावक के बारह अणुव्रत प्रगट होते हैं। वहाँ बारह व्रतों का जो शुभ विकल्प है, वह तो राग है, आस्रव है, वह वास्तव में प्रतिमा नहीं है, अंतर में चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन से जितना राग का अभाव होकर वीतरागता की वृद्धि होती है, उतनी आराधना और भक्ति है, और तदनुसार प्रतिमा होती है। दर्शन प्रतिमा के पश्चात् चैतन्य का अवलम्बन बढ़ने से शुद्धता के विशेष अंश प्रगट हों, तब दूसरी व्रत प्रतिमा प्रगट होती है। इसप्रकार प्रत्येक प्रतिमा में समझ लेना चाहिए। ज्यों ज्यों शुद्धता के अंशों में वृद्धि होती जाती है, त्यों त्यों प्रतिमा बढ़ती जाती है। इसप्रकार सभी प्रतिमाओं में शुद्ध चैतन्य का ही अवलम्बन है।

3. समायिक प्रतिमा – चैतन्य के भानपूर्वक उसके आश्रय से जितनी निर्विकल्प शांति रहे, उतनी सामायिक है। श्रावक निरंतर एकाग्रता का प्रयोग करता है। स्वभाव के अवलम्बन से जितनी वीतरागता हो गई है, उतनी सामायिक तो उसके सदाकाल चौबीस घंटे वर्तती है और तदुपरान्त विशेष लीनता का प्रयत्न करता है। ऐसी सामायिक प्रतिमा है।

स्वभाव के अवलम्बन द्वार शुद्धता में वृद्धि होकर जिसे सामायिक प्रतिमा प्रगट हुई, वह श्रावक जब सामायिक में बैठा हो, तभी उसे सामायिक प्रतिमा होती है और पश्चात् खाते-पीते समय उसे वह प्रतिमा नहीं होती – ऐसा नहीं है, स्वभाव के आश्रय से जितनी वीतरागता प्रगट हुई है, तदनुसार प्रतिमा सदैव वर्तती ही है।

बारह व्रतों में सामायिक व्रत आता है, परन्तु उसमें नियमपूर्वक नहीं है और तीसरी प्रतिमा में तो नियमपूर्वक सामायिक होती है।

स्वभाव के भानपूर्वक दर्शनप्रतिमावाले श्रावक को दर्शनप्रतिमा निरंतर होती है, व्रतप्रतिमा वाले को व्रतप्रतिमा निरंतर होती है, सामायिक प्रतिमावाले को सामायिक प्रतिमा निरंतर होती है। स्वभाव के अवलम्बन से उतनी उतनी शुद्धता वर्तती ही रहती है।

4. प्रौषधोपवास प्रतिमा – अष्टमी-चतुर्दशी पर्व तिथिओं के दिन चैतन्य की शांतिपूर्वक उपवास करे और आहार का राग छूट जाये, ऐसी शुद्धता प्रगट हो, उसका नाम चौथी प्रतिमा है। उसमें जो स्थिरता के अंश की वृद्धि है, उसका नाम प्रतिमा है, वहाँ जो राग है, वह कहीं धर्म नहीं है।

देखो, 'अष्टमी-चर्तुदशी का उपवास करता है, तभी यह प्रतिमा होती है और अन्य दिवसों में यह प्रतिमा नहीं होती' – ऐसा नहीं है, उसे उतना स्थिरता का अंश बढ़कर राग छूट गया है, इसलिए प्रौषधोपवास प्रतिमा उसके सदैव वर्तती ही रहती है, अन्य दिवसों में आहार करता हो, तब भी उसके यह प्रतिमा तो वर्तती ही है, क्योंकि उस समय भी अष्टमी-चर्तुदशी के दिन आहार करने के राग का तो उसके अभाव ही वर्त रहा है।

श्रावक को अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरणीय – इन दो कषायों का तो अभाव हो गया है, तदुपरान्त स्वभाव का अवलम्बन ज्यों ज्यों बढ़ता जा रहा है, त्यों त्यों तीसरा प्रत्याख्यानावरणीय कषाय भी मंद पड़ता जा रहा है और आत्मा की शुद्धि में वृद्धि हो रही है, उस शुद्धता के अनुसार यह ग्यारह प्रतिमाएँ होती हैं, शुद्धता के ही यह ग्यारह प्रकार हैं।

5. सचित्तत्यागप्रतिमा – आगे बढ़ने पर सचित्त वस्तु के ग्रहण का भाव न हो, इतनी सहज वीतरागता हो जाये, उसका नाम पाँचवीं प्रतिमा है। इस पाँचवीं प्रतिमावाले को सचित्त में से अचित्त करे, ऐसा भाव होता है। परन्तु सचित्त आहार जल का ग्रहण नहीं करता।

अंतर में कारणशुद्धपरमात्मा के अवलम्बन से प्रथम सम्यग्दर्शन होने से अपूर्व आत्मशांति प्रगट होती है और पश्चात् उसके विशेष अवलम्बन से अकषायी शांति की वृद्धि होने से पाँचवें गुणस्थान की प्रतिमा प्रगट होती है। सचित्त आहारादि का त्याग तो बाह्य की बात है, वास्तव में आत्मा आहारादि का ग्रहण-त्याग नहीं कर सकता, परन्तु अंतर में चिदानंद ज्ञाता की शांति बढ़ने से वैसा सचेत आहार-जल का राग ही नहीं होता, इसलिए सचेत वस्तु के साथ का निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी छूट जाता है। इसका नाम सचित्त त्याग प्रतिमा है। मैं सचित्त आहार का ग्रहण-त्याग कर सकता हूँ - ऐसी जिसकी बुद्धि है, उसे सचित्त-त्याग प्रतिमा होती ही नहीं; उसे तो दर्शनशुद्धि भी नहीं होती। दर्शनशुद्धि के पश्चात् श्रावक को स्वभाव के आश्रय से ज्यों ज्यों विशेष राग छूट जाता है, त्यों त्यों प्रतिमा बढ़ती जाती है। देखो, यह श्रावक के धर्म की आराधना ! मुनिदशा और श्रावक दशा वह अंतर की वस्तु है।

6. रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा - छठवीं प्रतिमावाले श्रावक को स्वभाव के आश्रय से ऐसी शुद्धता प्रगट हो गई है कि रात्रिभोजन का नियमपूर्वक अतिचाररहित त्याग हो गया है। अंतर में चिदानंदस्वरूप में स्थिरता की वृद्धि होने से चारों प्रकार के रात्रि भोजन का विकल्प भी नहीं आता, उसका नाम रात्रिभोजन त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमावाले श्रावक को दिवस के भाग में खाने का भाव आये और खाता हो, तब भी यह रात्रिभोजन त्याग प्रतिमा वर्तती है।

सामान्यरूप से तो रात्रिभोजन त्याग श्रावक के होता ही है, परन्तु उस प्रतिमावाले को तो नियमपूर्वक रात्रिभोजन का त्याग है और भीतर स्वभाव की उतनी शुद्धता बढ़ी है। अंतर में शुद्धता हुई, इसलिए बाह्य में रात्रिभोजन छूट गया अथवा तो बाह्य में रात्रिभोजन छूटा, इसलिए भीतर शुद्धता हुई - ऐसा नहीं है, परन्तु ऐसा सहज निमित्त-नैमित्तिक संबंध है कि अंतर में

स्वरूप की शुद्धता बढ़ने से राग दूर हुआ, तदनुसार उसके निमित्त भी दूर हो जाते हैं। देह की और आहार की क्रिया तो उस क्षण उसके कारण होती है और उसके कारण रुकती है, मैं तो ज्ञाता हूँ – ऐसे भानपूर्वक स्वरूप में स्थिरता के अंश ज्यों ज्यों बढ़ते जाते हैं, त्यों त्यों यह प्रतिमाएँ होती हैं।

7. ब्रह्मचर्य प्रतिमा – यह श्रावक के धर्म की बात चल रही है। स्वभाव के आश्रय से रत्नत्रय की आराधना करने से ज्यों ज्यों राग छूटता जाता है, त्यों त्यों यह प्रतिमाएँ होती हैं। ज्ञानानंद परम ब्रह्मस्वरूप निज आत्मा का भान होकर उसमें इतनी लीनता प्रगट हुई कि विषय का भाव ही छूट गया और बाह्य में निमित्तरूप से देह की वैसी क्रिया भी छूट गई, उसका नाम ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। अंतर की शुद्ध परिणति के साथ संधिपूर्वक की यह बात है। इस ब्रह्मचर्य प्रतिमा में नियमपूर्वक का शुद्ध ब्रह्मचर्य होता है। इससे पूर्व सामान्य ब्रह्मचर्य का भाव होता है, परन्तु उसे प्रतिमा नहीं कहा जाता। अंतर में चिदानन्दस्वरूप के भानसहित विशेष शुद्धता प्रगट होने से राग का सहज त्याग हो, तभी प्रतिमा कही जाती है। मात्र बाह्य में छोड़कर या शुभराग करके अपने को व्रत या प्रतिमाधारी मान बैठे हो और अंतर में शुद्ध परिणति का तो ठिकाना न हो, उसे व्रत या प्रतिमा नहीं होते। उसके लिए तो कहा है कि –

लह्युं स्वरूप न वृत्तिनुं ग्रह्युं व्रत अभिमान,
ग्रहे नहि परमार्थने लेवा लौकिक मान।

अंतर की शुद्ध परिणति के भान बिना, बाह्य क्रियाकाण्ड में या राग में धर्म मानकर जो अपने को व्रतधारी मानता है, उसके वास्तव में व्रत नहीं है, किन्तु व्रत का अभिमान है। अंतरंग स्वरूप के भानपूर्वक उसमें एकाग्रता बढ़ने से उसमें से व्रत और प्रतिमा आते हैं, कहीं बाह्य में से व्रत या प्रतिमा नहीं आते। कोई कहे कि 'मुझे सात प्रतिमाएँ दो!' वहाँ सामनेवाला कहे कि 'लो, यह सात प्रतिमाएँ।' तो क्या किसी दूसरे के पास से प्रतिमाएँ आती होंगी ? प्रतिमा किसी अन्य के पास से नहीं आती और न बाह्य में वेश

परिवर्तन से प्रतिमा होती है। प्रतिमा तो अंतर की वस्तु है। स्वभाव में स्थिरता बढ़ने से राग रहित पर्याय प्रगट होती है, तदनुसार प्रतिमा है, ऐसी प्रतिमा जब स्वयं अपने स्वभाव में से प्रगट करे, तब श्रीगुरु ने प्रतिमा दी—ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

8. आरंभत्यागप्रतिमा – पाँचवीं प्रतिमा में से सचेत का त्याग था, परन्तु वहाँ अभी सचेत में से अचेत करने के आरंभ परिणाम का त्याग नहीं था, यहाँ तो स्वरूप में इतनी स्थिरता बढ़ी कि सचेत में से अचेत करने के आरंभ का भाव भी नहीं आता। हरियाली काटना, चूल्हा सुलगाना आदि आरंभ के भाव आठवीं प्रतिमावाले श्रावक के नहीं होते। किसी पर का घात करने की या बचाने की पर्याय में नहीं कर सकता, मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ – ऐसा भान तो धर्मी को चौथे गुणस्थान में हो गया है, तत्पश्चात् ज्ञानस्वरूप के अवलम्बन में स्थिर होने से ऐसी शुद्धता बढी कि आरंभ का राग ही छूट गया और बाह्य में आरम्भ की क्रिया भी स्वयमेव छूट गई, इसका नाम आठवीं प्रतिमा है। 'आरंभ का त्याग' – ऐसा निमित्त से कहा जाता है, वास्तव में आत्मा ने बाह्यक्रिया को नहीं छोड़ा है और बाह्य में आरम्भ छूटा, इसलिए अंतर में शुद्धता प्रगट हुई – ऐसा भी नहीं है। अंतर में शुद्धता की वृद्धि होने से राग छूट गया, वहाँ निमित्त से ऐसा कहा जाता है कि आत्मा ने आरंभ का त्याग किया। वास्तव में बाह्य के त्याग में आत्मा की प्रतिमा नहीं है, परन्तु अंतर के चिदानंदस्वभाव में एकाग्रता की वृद्धि होने से शुद्धता का अंश बढ़ा और आरम्भ का भाव छूट गया उसका नाम प्रतिमा है। इस प्रतिमावाले श्रावक को स्वभाव का अवलम्बन इतना वर्तता है कि चौबीसों घंटे आरम्भ त्याग प्रतिमा वर्तती है, आरम्भ का भाव उसके उत्पन्न ही नहीं होता।

9. परिग्रहत्याग प्रतिमा – आठवीं प्रतिमा तक परिग्रह का राग होता है, परन्तु फिर अंतर में चिदानन्दस्वरूप का विशेष अवलम्बन लेने से परिग्रह का राग छूट जाता है, वहाँ परिग्रह को छोड़ा – ऐसा निमित्त से कहा जाता है।

वास्तव में तो स्वभाव के आश्रय से शुद्धता होने से राग होता ही नहीं, इसलिए राग का त्याग भी व्यवहार से है। देखो, इसमें व्यवहार भी आ जाता है। किसप्रकार ? ध्रुव चैतन्य का अवलम्बन लेने से शुद्धता हुई, वह निश्चय और राग छूटा, वह व्यवहार और राग छूटने से राग के निमित्तों के साथ संबंध छूट गया, वहाँ आत्मा ने उन निमित्तों को छोड़ा – ऐसा कहना, वह असद्भूत व्यवहार है। शुद्धता की वृद्धि होने से राग का और उसके निमित्त का संबंध छूट ही जाता है – ऐसा नियम है। इस नवमीं प्रतिमावाले के अभी वस्त्र होते हैं, परन्तु पैसादि का परिग्रह नहीं होता। पैसे का निकट आना अथवा दूर जाना, वह तो जड़ की क्रिया है, उसका कर्ता आत्मा नहीं है। राग था, तब लक्ष्मी आदि का परिग्रह कहा और राग छूटने से लक्ष्मी आदि परिग्रह को छोड़ा – ऐसा कहा। इस ओर चैतन्य में स्थिरता बढ़ी, वहाँ पैसादि परिग्रह की ओर का भाव छूट गया, उसका नाम परिग्रहत्याग प्रतिमा है।

देखो, इस वीतराग दर्शन में श्रावक की प्रतिमा ! इसमें हठ नहीं किन्तु सहज है, ज्यों ज्यों स्वरूप में स्थिरता होती जाती है, त्यों त्यों यह प्रतिमा होती है।

10. अनुमतित्याग प्रतिमा – इस प्रतिमावाले श्रावक अपने लिए आहारादि की अनुमति नहीं देते। मेरे लिए यह बनाना, ऐसा करना – ऐसा दसवीं प्रतिमावाले नहीं कहते, शरीर में रोगादि हो वहाँ 'मेरे लिए अमुक वस्तु बनाना' – इसप्रकार अपने लिए आहार की अनुमोदना का विकल्प भी नहीं आता, ऐसी अंतर की शुद्धता बढ़ गई है। कोई उससे पूछे कि 'आपके लिए क्या करूँ ?' तो वह उत्तर नहीं देता। इस प्रतिमावाला अपने लिए बनाया हुआ आहार लेता है, परन्तु स्वयं ऐसी अनुमति नहीं देता कि मेरे लिए अमुक वस्तु बनाना।

11. उद्दिष्टत्याग प्रतिमा – इस प्रतिमावाले श्रावक अपने लिए बनाया हुआ आहार नहीं लेते। सहजरूप से उन्हें वैसे आहार का विकल्प टूट जाता

है, इतनी स्वरूप की स्थिरता बढ़ गई है। इस प्रतिमावाले श्रावक में क्षुल्लक और ऐलक ऐसे दो प्रकार हैं। उन क्षुल्लक या ऐलक को अपने लिए बनाए हुए आहार लेने की वृत्ति नहीं उठती। उन्हें रोग हुआ हो और उनके लिए कोई खास आहारादि बनाए तो वे नहीं लेते, उन्हें वह आहार लेने का भाव ही नहीं आता, ऐसी चैतन्य के आश्रय से शुद्धता बढ़ गई है। शुद्धता में वृद्धि होने से राग छूटा, वहाँ उद्दिष्ट आहार को छोड़ा – ऐसा निमित्त से कहा जाता है। वास्तव में आहार छूटा, वह तो निमित्त के कारण स्वयं छूटा है, आत्मा ने उसे नहीं छोड़ा।

ऐसी ग्यारह प्रतिमाओं की वस्तुस्थिति है। उसमें प्रथम छह प्रतिमावाले जघन्य श्रावक हैं, सात-आठ-नव प्रतिमावाले मध्यम श्रावक हैं और दस-ग्यारह प्रतिमा वाले उत्तम श्रावक हैं। परन्तु यह बात खास ध्यान में रखने योग्य है कि यह प्रतिमाएँ सम्यग्दर्शनपूर्वक ही होती हैं। सम्यग्दर्शनपूर्वक चैतन्य के आनंद का अनुभव बढ़ते-बढ़ते हठ बिना सहजरूप से ऐसी प्रतिमाएँ होती हैं। देखो, श्रावक की ऐसी दशा होती है कि उसका नाम भक्ति है, उसका नाम रत्नत्रय की आराधना है और वह श्रावकों का धर्म है, इसके अतिरिक्त राग में धर्म नहीं है और बाह्य पदार्थों का ग्रहण-त्याग तो आत्मा कर ही नहीं सकता। आत्मा में 'त्यागोपादानशून्यत्व' नाम का धर्म है, इसलिए आत्मा पर का ग्रहण या त्याग नहीं करता। ऐसे आत्मा के भानपूर्वक हठरहित वीतरागी दशा प्रगट हो, वहाँ ऐसी प्रतिमा होती है। हठ करके बाह्य में त्याग करे, उससे कहीं प्रतिमा नहीं हो जाती। शुद्ध स्वभाव में अन्तरोन्मुखता से ज्यों ज्यों गुण की शुद्धता प्रगट होती जाती है, त्यों त्यों ऐसी वीतरागी प्रतिमा श्रावक के प्रगट होती जाती है।

इसप्रकार जो वीतरागी पर्याय को भजे, वह श्रावक भक्त है, वह रत्नत्रय का आराधक है। स्वभाव के आश्रय से जितनी गुण की निर्मलता होती है,

शेष पृष्ठ 17 पर.....

मोक्षमार्ग का उद्घाटन

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का एक प्रवचन)

– ब्रह्मचारी हरिलाल जैन, सोनगढ़

जयपुर के महान आध्यात्मिक विद्वान पंडित श्री टोडरमलजी का एक सूत्र है – 'सम्यक्त्वी को व्यवहारसम्यक्त्व में निश्चयसम्यक्त्व गर्भित है, सदैव गमनरूप है।' ऐसा लगता है कि इस सूत्र के द्वारा हमारे जैसे साधर्मियों को आपने निश्चय सम्यक्त्वरूपी रत्न ही दिया है – जिसके द्वारा मोक्षमार्ग का उद्घाटन होता है। यह सूत्र मुलतानवाले साधर्मियों के ऊपर की चिट्ठी में लिखा गया था, उसी मुलतान नगर के हमारे सैकड़ों साधर्मीजन आज जयपुर में बसे हुये हैं और पंडितजी के द्विशताब्दि महोत्सव में आनंद से भाग ले रहे हैं – यह भी हर्ष की बात है। उसी प्रकार यह भी हर्ष की बात है कि उपरोक्त सूत्र का रहस्य खोल के मोक्षमार्ग का उद्घाटन करनेवाले श्री कानजीस्वामी भी इस प्रसंग पर सौराष्ट्र से संघ सहित जयपुर पधारे हैं। अब, श्री पंडितजी के सूत्र के ऊपर श्री कानजीस्वामी का विवेचन आप पढ़िये.... और मोक्षमार्ग का उद्घाटन कीजिये।

'सबसे पहले बात यह है कि मोक्षमार्ग का उद्घाटन निश्चय सम्यक्त्व से होता है। व्यवहार वही सच्चा कि जिसकी साथ में निश्चय हो। हमारे पंडितजी ने कहा है कि 'सम्यक्त्वी को व्यवहार-सम्यक्त्व में निश्चयसम्यक्त्व गर्भित है, सदैव गमनरूप है।' देखो, इसमें महत्व का सिद्धान्त है; इससे निश्चय-व्यवहार का स्पष्ट खुलासा हो जाता है। कोई कहे कि चतुर्थ गुणस्थान में निश्चय सम्यक्त्व नहीं होता – तो यह सच्ची बात नहीं है। चौथे गुणस्थान से ही निश्चय सम्यक्त्व का निरंतर परिणमन है। व्यवहार-सम्यक्त्व की साथ ही निश्चय-सम्यक्त्व यदि विद्यमान न हो तो वह व्यवहार-सम्यक्त्व भी सच्चा नहीं है। अर्थात् वहाँ सम्यक्त्व ही विद्यमान नहीं परन्तु मिथ्यात्व है।

यहाँ व्यवहार-सम्यक्त्व में निश्चय-सम्यक्त्व गर्भित है – ऐसा कहा; एक वस्तु के कहने से दूसरी वस्तु उसमें आ ही जाये – ऐसा यहाँ 'गर्भित' का अर्थ समझना। देव गुरु शास्त्र की श्रद्धा आदि को जहां व्यवहार सम्यक्त्व कहा वहाँ शुद्धात्म श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व भी साथ में विद्यमान है – ऐसा समझना। यदि ऐसा शुद्धात्म श्रद्धान न हो तब तो वहाँ सम्यक्त्व ही नहीं

है; वहाँ तो मिथ्यात्व है; और मिथ्यादृष्टि को तो व्यवहार-सम्यक्त्व होने का भी यहाँ इनकार किया है।

किसी का ऐसा मत है कि पहले व्यवहार और बाद में निश्चय; तो इसका यह अर्थ हुआ कि उसे व्यवहार की साथ निश्चय का परिणमन है, अत: अकेला शुभराग है; उसे यहां सम्यक्त्व नहीं कहते। जिसको निश्चय सम्यक्त्व का परिणमन है, उसे ही सम्यग्दर्शन है, जहां निश्चय नहीं वहां सम्यग्दर्शन नहीं। अत: पहले व्यवहार व पीछे निश्चय - इस सिद्धांत में बड़ी भूल है - इसमें एकांत व्यवहार हो जाता है। निश्चय और व्यवहार दोनों साथ साथ हैं, इनमें भी मुख्यता निश्चय की है। स्वभाव की शुद्धता रूप निश्चय की साथ उस भूमिका के योग्य जो रागादि है, वह व्यवहार है।

चौथे गुणस्थान में निश्चय नहीं होता, वहां अकेला व्यवहार होता है' - ऐसी जिनकी मान्यता है, वे शुद्धात्मा को दूर रखकर अकेले राग से धर्म करना चाहते हैं - परंतु ऐसे धर्म नहीं होता। निश्चय सम्यक्त्वूर्व ही धर्म का या मोक्षार्ग का प्रारंभ होता है। निश्चय सम्यक्त्व के बिना किसी को चतुर्थ गुणस्थान भी नहीं हो सकता, तब फिर मुनिदशा तो कहां से हो?

विशेष यह है कि चतुर्थादि भूमिका में जो निश्चय-व्यवहार एक साथ है उनमें भी, जो निश्चय-सम्यक्त्वादि है वह अराग भाव है, और जो व्यवहार सम्यक्त्वादि है वह सराग भाव है। वे दोनों एक भूमिका में एक साथ विद्यमान रहते हुए भी उनमें जो रागभाव है वह साथ के अरागभाव को मलिन नहीं करता, एवं वह रागभाव अरागभाव का कारण भी नहीं होता। दोनों की धारा ही अलग अलग है; दोनों के कार्य भी जुदे हैं। रागभाव तो बंध का कारण होता है और अरागभाव मोक्ष का कारण होता है। साधक को ऐसी दोनों धारा का प्रवाह एक साथ चलता है; परंतु जहां अकेला शुभराग है, रागरहित भाव बिल्कुल नहीं है - वहां धर्म नहीं है। शुद्धता व राग - ये दोनों धारायें साधक के एकसाथ रहती हैं तो भी वे दोनों एक नहीं हो जाती।

चतुर्थ गुणस्थान में अकेला व्यवहार होता है और निश्चय नहीं होता - ऐसा यदि कोई माने तो वह मान्यता सच्ची नहीं है। एवं व्यवहार आश्रय से निश्चय होगा - ऐसा कोई माने तो वह भी सच नहीं। निश्चय तो शुद्ध आत्मा के आश्रित है और व्यवहार पर के आश्रित है। अत: निश्चय सम्यग्दर्शन, वह

वास्तविक मोक्षमार्ग नहीं है, वह मोक्षमार्ग में कोई बार सहकारी (साथ में चलनेवाला) भले हो, परंतु वह स्वयं तो मोक्षमार्ग नहीं है।

व्यवहार के बिना अकेला निश्चय तो हो सकता है परंतु निश्चय के बिना व्यवहार अकेला नहीं होता; अत: यहां 'निश्चय सम्यक्त्व में व्यवहार-सम्यक्त्व गर्भित है', ऐसा न कहा, परंतु 'व्यवहार सम्यक्त्व में निश्चय सम्यक्त्व गर्भित है' – ऐसा कहा। केवलज्ञानी आदि के व्यवहार सम्यक्त्व तो नहीं है, अत: निश्चय के साथ व्यवहार का परिणमन सदैव होना चाहिए – ऐसा नियम नहीं है। परंतु व्यवहार के साथ तो निश्चय होना ही चाहिए – तभी उस व्यवहार को सच्चा व्यवहार कहने में आयेगा। अत: कहा कि 'सम्यग्दृष्टि के व्यवहार सम्यक्त्व में निश्चय सम्यक्त्व गर्भित है।' परंतु मिथ्यादृष्टि के निश्चय के बिना जो व्यवहार है वह वास्तव में व्यवहार नहीं है परंतु व्यवहाराभास है। जो सर्वज्ञदेव आदि के आत्मा को सचमुच में पहचानेगा वह अपने आत्मा को भी अवश्य पहचानेगा, अत: सच्चे व्यवहार के साथ निश्चय अवश्य होगा। सम्यग्दृष्टि के निरन्तर (अर्थात् पूजनादि शुभ या भोजनादि अशुभ क्रिया के समय में भी) निश्चय सम्यक्त्व का परिणमन चालू ही है; यदि वह न हो तो सम्यग्दृष्टिपन ही नहीं रहता।

देखिये, यह सम्यग्दर्शन सच्ची खोज! व्यवहार मार्गणा के कथन में ऐसा आवे कि सम्यग्दर्शन चारों गतियों में होता है, संज्ञीपंचेन्द्रियों के होता है, त्रसकाय वालों के होता है – इत्यादि; यहां कहते हैं कि शुद्धात्मा की जहां प्रतीति हो वहीं सम्यग्दर्शन होता है, और शुद्धात्मा की प्रतीति जहां न हो वहां सम्यग्दर्शन नहीं होता। अत: सम्यग्दर्शन को खोज तेरे शुद्धात्मा में। यह निश्चयमार्गणा है। शुद्धात्मा की प्रतीति के बिना गति-इंद्रिय-काय आदि में सम्यग्दर्शन को खोजे तो वह मिलने का नहीं। जिस सम्यग्दर्शन को शोधने का है, उसका सच्चा स्वरूप ही जो नहीं जानता वह उसको खोजेगा कैसे? इसलिए मोक्षार्थी को सबसे पहले ऐस सम्यग्दर्शन का स्वरूप पहचान के इसकी आराधना करनी चाहिए, क्योंकि सम्यग्दर्शन ही मोक्षमार्ग का पहला डग है, इसके बिना मोक्षमार्ग में एक डग भी नहीं चला जा सकता।

साधक के सम्यक्त्व के साथ राग हो तो भी, उस समय भी सम्यग्दर्शन स्वयं तो रागवाला हुआ नहीं है। भले ही कदाचित् उस वक्त 'सराग-

सम्यक्त्व' नाम दिया जाये, तो भी वहां दोनों का भिन्नपना समझ लेना कि सम्यग्दर्शन अलग परिणाम है और राग अलग परिणाम है; एक ही भूमिका में 'राग' व 'सम्यक्त्व' दोनों साथ होने से वहां 'सराग-सम्यक्त्व' कहा है। कहीं राग वह सम्यक्त्व नहीं है, और न सम्यक्त्व स्वयं सराग है। चौथे गुणस्थान का सम्यक्त्व परिणाम वह भी वीतराग ही है; और वीतरागभाव ही मोक्ष का साधन होता है, सरागभाव मोक्ष का साधन नहीं होता।

सम्यग्दृष्टि के एक साथ दोनों धारायें होने पर भी, एक मोक्ष का कारण व दूसरा बंध का कारण - इन दोनों को भिन्न-भिन्न रूप से पहचानना चाहिए। बन्ध-मोक्ष के कारण भिन्न-भिन्न हैं, उनको यदि एक दूसरे में मिला दें तो तत्त्व श्रद्धान में भूल हो जाये। सम्यग्दर्शन के पास के राग को भी जो मोक्ष का कारण मान ले, उसने तो बन्ध के कारण को ही मोक्ष का कारण मान लिया; अत: उसे मोक्षमार्ग नहीं होता, वह मोक्षमार्ग के बहाने में भ्रम से बंध का ही सेवन कर रहा है।

चतुर्थ गुणस्थान में परिणति में आंशिक शुद्धता सदैव रहती है। परिणति में जितनी शुद्धता है उतना ही धर्म है, उतना ही मोक्षमार्ग है। जीव जब अंतर्मुख होके अपूर्व धर्म का प्रारंभ करता है - साधक भाव की शुरुआत करता है, तब उसे निर्विकल्प शुद्ध उपयोग होता है। ऐसे निर्विकल्प स्वानुभव के द्वारा ही मोक्षमार्ग के दरवाजे खुलते हैं।

नमस्कार हो.... मोक्षमार्ग के उद्घाटन करनेवाले महात्माओं को!

पृष्ठ 13 का शेष.....

उतनी प्रतिमा निरंतर होती है, वहाँ गुण की शुद्धि अनुसार राग का त्याग और उसके निमित्त का त्याग होता है। अंतर में शुद्ध रत्नत्रय की आराधना से रहित व्रत-तप-त्याग और प्रतिमाएँ तो बालव्रत, बालतप, बालत्याग और बालप्रतिमा हैं, 'बाल' अर्थात् मूर्खतायुक्त-अज्ञानी के व्रत-तप-त्यागप्रतिमा हैं। चैतन्यस्वभाव का भान करके श्रावक रत्नत्रय को भजता है, उतनी भक्ति है और उतना धर्म है, उसी के शुद्धतानुसार यथार्थ प्रतिमा आदि होते हैं।

श्रावक की प्रतिमाओं का ऐसा स्पष्ट वर्णन प्रवचन में प्रथमबार ही आया है।

— आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष-7, अंक-11

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

कवि व्यवस्था

हौं निहचै तिहुंकाल, सुद्ध चेतनमय मूरति।
पर परनति संजोग, भई जड़ता विसफूरति।।
मोहकर्म पर हेतु पाइ, चेतन पर रच्चइ।
ज्यौं धतूर-रस पान करत, नर बहुविध नच्चइ।।
अब समयसार वरनन करत,
परम सुद्धता होहु मुझ।
अनयास बनारसिदास कहि,
मिटहु सहज भ्रमकी अरुझ।।4।।

अर्थः- मैं निश्चयनय से सदाकाल शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ, परन्तु पर-परणति के समागम से अज्ञानदशा प्राप्त हुई है। मोहकर्म का पर निमित्त पाकर आत्मा परपदार्थों में अनुराग करता है, इससे धतूरे का रस पीकर नाचनेवाले मनुष्य जैसी दशा हो रही है। पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि अब समयसार का वर्णन करने से मुझे परम विशुद्धता प्राप्त होवे और बिना प्रयत्न ही मिथ्यात्व की उलझन अपने आप मिट जावे।।4।।

काव्य - 4 पर प्रवचन

अब, समयसार के तीसरे कलश का अर्थरूप काव्य कहते हैं।

मैं तो अनादि-अनन्त शुद्ध चैतन्य की मूर्ति हूँ, परन्तु परपरणति रूप राग-द्वेष और अज्ञान के संयोग से जड़ता अर्थात् अज्ञानदशा प्रकट हुई है। ''मैं तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ''- यह द्रव्यदृष्टि है, परन्तु मैंने निजवस्तु को भूलकर अज्ञान खड़ा किया है; राग-द्वेष, पुण्य-पाप-यह सब अज्ञान है। इस अज्ञान के संयोग से मुझे जड़ता प्राप्त हुई है। मेरा स्वरूप तो ऐसा है कि आनन्द और ज्ञान की जागृति प्रगट हो किन्तु अज्ञान के कारण से जड़ता हुई है। जड़ता विसफुरति, पुण्य-पाप, राग और द्वेष कि जिसमें चैतन्य के

स्वभाव का अभाव है ऐसी जड़ता की जागृति हुई है। पर्याय में ऐसा बना है यह बनारसीदासजी कहते हैं। वस्तु तो वस्तु ही है, उसमें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा। द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टि दोनो का विषय यहाँ बताया है।

परपरिणति का संयोग मैंने किया है, किसी अन्य ने नहीं कराया है। अपने को आप भूल के हैरान हो गया..मैंने ही मलिन दशा का संयोग किया है। मैं शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभाव तो त्रिकाल हूँ; फिर भी मेरी दशा में मैंने विकार यानी संसार प्रवृत्ति की जागृति की है। पुण्य-पापरूप दोनों विकारभाव जड़ हैं, उनमें चेतनता नहीं है। मैं तो त्रिकाल चेतन स्वरूप होने पर भी दशा में ऐसी अचेतनता की जागृति हुई है और वह भी अनादि से है यह भी सिद्ध किया। अनादि से पर्याय में शुद्धता थी और अब अशुद्धता हुई- ऐसा नहीं है। अपने परमानन्द स्वभाव की दृष्टि नहीं की- इससे अनादि से पर्याय में अशुद्धता है। अपने शुद्ध त्रिकाल स्वभाव पर दृष्टि नहीं करके मैंने ही अपनी दशा में अशुद्धता की जागृति की है। राग-द्वेष, पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत-अव्रत, काम-क्रोध आदि विकल्पोंवाली दशा को मैं ही प्राप्त हुआ हूँ।

पर्याय में अशुद्धता हुई उसमें मोहकर्म के उदय का निमित्त था। **'मोहकर्म पर हेतु पाइ, चेतन पर रच्चइ।'** अनादि से पर ऐसे मोहकर्म का निमित्त पाकर जीव अपनी पर्याय में राग को रचता है। मूल में तो अपने स्वरूप का भान नहीं, अत: जीव परपदार्थ का लक्ष्य करके विकारी दशा को उत्पन्न करता है। शरीर को, मन को, वाणी को तो आत्मा रचता ही नहीं, क्योंकि वे तो जड़ हैं -परद्रव्य हैं, आत्मा तो उनके लक्ष्य से अपनी पर्याय में विकार को रचता है। स्वयं त्रिकाली निर्विकार भगवान होने पर भी विकार को रचता है; क्योंकि दृष्टि मिथ्या है।

'चेतन पर रच्चइ' भगवान आत्मा त्रिकाल प्रज्ञाब्रह्म स्वरूप होने पर भी अपने को भूलकर राग और पुण्य-पाप की रचना करता है, उससे संसार है। 'पर रच्चई' यानी पर के लक्ष्य से अपनी ममता को रचता है। मोहकर्म के निमित्त से अर्थात् उसका संयोग देखकर पर्याय में स्वयं अज्ञान, मिथ्याश्रद्धा,

मिथ्याभाव, राग-द्वेष आदि विकार को उत्पन्न किया है। इससे आनन्द के स्थान पर दु:ख खड़ा हुआ है।

ज्यों धतूर रसपान करत, नर बहुविध नच्चइ, जैसे धतूरा पीनेवाले को वस्तु सफेद होने पर भी पीली दिखती है; वैसे ही मिथ्यादृष्टि को विपरीत दृष्टि के कारण परवस्तु निजरूप दिखती है। अपना शुद्धस्वरूप तो दिखता ही नहीं और परवस्तु मेरी है और मैं उसका हूँ- ऐसा मानकर असंख्य प्रकार के अशुभराग की रचना करके नाचता है। सबसे भिन्न अपने शुद्धस्वरूप को नहीं देखता।

'अब समयसार वरनन करत' -अब तो मैं आत्मा का वर्णन करूँगा कि जो परम शुद्ध चैतन्य है। आत्मा का वर्णन करते हुए मेरा लक्ष्य तो शुद्ध चैतन्य पर ही है।

बनारसीदासजी कहते हैं कि भगवान जैसा कहते हैं वैसे शुद्धात्मा का वर्णन करूँगा। समयसार माने ही शुद्धात्मा; उसका वर्णन करने से मुझे परम शुद्धता की प्राप्ति होओ। मूल कलश में "समयसार व्याख्येव" शब्द पड़ा है। उसका अर्थ ही यह है कि शुद्धात्मा के वर्णन से मेरी पर्याय में जो थोड़ी अशुद्धि है, उसका नाश होकर परम शुद्धता प्राप्त हो जाओ। समयसार का वर्णन करते हुए लक्ष्य तो अन्दर में घूँटता है तो उसी काल में सर्व अशुद्धि नष्ट हो जाओ।

'परम शुद्धता होहु मुझ'- मैं त्रिकाल शुद्ध ही हूँ- ऐसी दृष्टि हुई है। इसकारण पर्याय में शुद्धता तो है ही, परन्तु साथ में थोड़ी अशुद्धि है, उसका नाश होकर परम शुद्धता प्राप्त होओ। द्रव्य-गुण में जैसी शुद्धि है, वैसी पर्याय में प्राप्त होओ। शास्त्र की रचना करते समय भले ही विकल्प हो और वाणी निकलती हो; परन्तु मेरी दृष्टि तो शुद्ध सत्ता के ऊपर ही है, ध्रुव पर दृष्टि तो पड़ी ही है, तो पर्याय में अशुद्धता है, उसका नाश हो जाओ।

व्याख्या में अशुद्धि का नाश हो जाओ ऐसा विकल्प है। व्याख्या तो निमित्त है, उससे अशुद्धि नष्ट नहीं होती, परन्तु ऐसा विकल्प उठा है।

बनारसीदासजी कहते हैं कि **"अनायस मिटहूँ सहज भ्रम को अरुझ"** अनायास अर्थात् ग्रन्थ पढ़ने आदि का प्रयत्न किये बिना मिथ्यात्व की अरुझ अपने आप मिट जाये। मैं तो आत्मा के ग्रन्थ को खूब खोलूँगा। मेरी दृष्टि तो शुद्धस्वभाव के ऊपर ही है, अत: अशुद्धता का नाश होओ। दृष्टि के ज़ोर में प्रतिक्षण शुद्धता बढ़ते-बढ़ते परम शुद्धता प्रकट हो जाओ।

बनारसीदासजी कहते हैं कि द्रव्य और गुण तो शुद्ध ही हैं और पर्याय में भी सम्यग्दर्शन है उतनी शुद्धि है; परन्तु अभी अशुद्धि पूरी गई नहीं तो इस काल में मेरी अनुभूति अन्तर में एकाग्र होकर अशुद्धता का नाश हो जाओ।

अब यहाँ दुरबुद्ध का अर्थ दिया है, वह लेते हैं। दुरबुद्ध माने मिथ्यादृष्टि। अथवा कोई व्याकरणादि का ज्ञाता पुरुष; परन्तु नयज्ञान से जो रहित है- ऐसा। जिसको निश्चय-व्यवहार का स्वरूप क्या है, उसकी कुछ भी खबर नहीं- ऐसे लोगों को आदिपुराण में जिनसेनाचार्य ने अक्षर-म्लेच्छ कहा है। अपने स्वरूप का भान नहीं और अकेले व्याकरण, संस्कृत आदि के ज्ञान से अपने को ज्ञानी मान लेता है; वह अक्षरम्लेच्छ-अक्षर के पीछे पागल ऐसा कहा है। अपनी दृष्टि कैसी है और वास्तव में वस्तु क्या है यह समझे बिना शास्त्र पढ़ने में होशियार हो जाये, सुन्दर कवितायें रचे उससे क्या हुआ ?उसे तो यहाँ अक्षरम्लेच्छ कहा है।

जिसको शुद्ध निश्चयनय से अपना शुद्ध आनन्द पकड़ में नहीं आया और इस अक्षर म्लेच्छपने में अटका हुआ है, वह दुरबुद्ध है।

इस प्रकार तीनों कलशों का अर्थ हुआ।

शास्त्र का माहात्म्य

निहचैमैं रूप एक विवहारमैं अनेक,
यही नै-विरोधमैं जगत भरमायौ है।
जगके विवाद नासिबेकौं जिन आगम है,
जामैं स्याद्वादनाम लच्छन सुहायौ है।।

दरसनमोह जाकौ गयौ है सहजरूप,
आगम प्रमान ताके हिरदैमैं आयौ है।
अनैसौं अखंडित अनूतन अनंत तेज,
ऐसो पद पूरन तुरंत तिनि पायौ है।।5।।

अर्थः- निश्चयनय में पदार्थ एकरूप है और व्यवहार में अनेकरूप है। इस नय-विरोध में संसार भूल रहा है, सो इस विवाद को नष्ट करनेवाला जिनागम है जिसमें स्याद्वाद का शुभ चिह्न है। जिस जीव को दर्शनमोहनीय उदय नहीं होता उसके हृदय में स्वतः स्वभाव यह प्रामाणिक जिनागम प्रवेश करता है और उसे तत्काल ही नित्य, अनादि और अनंत प्रकाशवान मोक्षपद प्राप्त होता है।।5।।

काव्य - 5 पर प्रवचन

श्री समयसार शास्त्र के चौथे कलश की टीका प्रारम्भ करते हैं। यह नाटक समयसार के जीवद्वार का पाँचवा काव्य है। इसमें बनारसीदासजी शास्त्र का माहात्म्य करते हैं-

निश्चयनय में पदार्थ एकरूप है और व्यवहार में अनेकरूप है। अनन्तगुणों से अभेद आत्मा को देखो तो एकरूप है, अनेक गुण तथा पर्यायों से देखो तो आत्मा अनेकरूप है। जो एक है वही अनेक है; क्योंकि वस्तुदृष्टि से आत्मा एक है और उसकी शक्ति व अवस्था देखो तो अनेक है।

'याही नै-विरोध में जगत भरमायो है', निश्चय और व्यवहारनय के भान बिना जगत भ्रम में पड़ा है। वस्तु को एकरूप ही माने, गुण और अवस्था से अनेकरूप है- ऐसा न माने, वह भ्रम में है; उसीप्रकार ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त शक्तियाँ होने पर भी आत्मा वस्तुरूप से एक है- ऐसा न माने तो भी भ्रम में है।

आत्मा क्या वस्तु है?उसका भान होना ही धर्म है, वही सम्यग्दर्शन है और वही जन्म-मरण मिटाने का उपाय है।

व्यवहार अर्थात् भेद से देखें तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण और

अवस्थायें अनेक हैं और अभेद से देखें तो वस्तु एक है। जैसे सुवर्ण को वस्तुरूप से देखो तो सोना एक वस्तु है, किन्तु पीलापन, चिकनापन, वज़न आदि से देखो तो उसमें अनेक गुण और अवस्थायें दिखती हैं। आत्मा सत् चिदानन्द ज्ञान और आनन्द के रूपवाला एक पदार्थ है।

जगत के लोगों में तो कोई आत्मा को अखण्ड एकरूप ही देखते हैं और कोई आत्मा को अनेक अवस्थावाला ही देखते हैं। वे दोनों भूल में हैं। वस्तु को एकान्त से एकपक्षीय दृष्टि से देखते हैं, वे भ्रम में पड़े हैं। वस्तु को अखण्डरूप नहीं मानना भी भूल है और अनेक गुण-पर्यायरूप भी वस्तु स्वयं ही है- ऐसा नहीं मानना भी भूल है भ्रम है। परस्पर विरुद्ध दो नयों में जगत भरमाया है। कोई एक को नहीं मानता तो कोई अनेक को नहीं मानता, दोनों भूल में हैं।

जग के विवाद नासिवेकों जिन आगम हैं। आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है, वह पर का कार्य करनेवाला अथवा पर से अपना कार्य करानेवाला नहीं है, सबको जाननेवाला है -ऐसे जाननहार तत्त्व की अन्तर्मुख एकाग्रता से जिसने अपनी शक्ति के सत्त्व में सबको जाननापना था, वह वर्तमान दशा में प्रकट किया; उसका नाम 'सर्वज्ञ' है। ऐसे सर्वज्ञ भगवान की जो वाणी निकली, वह निश्चय और व्यवहार के विरोध को मिटानेवाली है।

सर्वज्ञ वीतराग की वाणी नय विरोध को किस प्रकार मिटाती है? कि वस्तुदृष्टि से-सामान्य दृष्टि से- तत्त्वदृष्टि से आत्मा एक है और व्यवहारदृष्टि से -भेददृष्टि से आत्मा अनेक रूप है इन दोनों में कोई विरोध नहीं; परन्तु जगत के अज्ञानी जीवों ने कभी अपनी जाति को जानने का प्रयत्न नहीं किया। देखनेवाला स्वयं है, पर देखता है अन्य को -ऐसी दशा हुई है। स्वयं कौन है, उसे नहीं जानता। 'वर रहित बारात' जैसी दशा हुई है, जाननेवाला स्वयं, किन्तु जानता है पर को!

तुम कौन हो और किस प्रकार हो? मैं वस्तुदृष्टि से एक हूँ और ज्ञान, आनन्द आदि गुणभेद के रूप से अनेक हूँ। दोनों दृष्टियों में विरोध लगता है।

उस विरोध को वीतराग शासन मिटा देता है। द्रव्यदृष्टि से आत्मा एक ही है और भेददृष्टि से अनेक ही है।

जो एक हो वह अनेक कैसे होगा ?और जो अनेक है, वह एक कैसे होगा ?उन्हें तो परस्पर विरोध है- ऐसा लगता है। जैनदर्शन उस विरोध को मिटा देता है। वीतराग का आगम उस विरोध को मिटा देता है कि भाई ! सोना सोनारूप से एक है; परन्तु पीलापन, चिकनापन आदि गुण तथा हार, कंगन, कुण्डल आदि अवस्थारूप से अनेक है। जैसे उसमें विरोध नहीं है, उसी प्रकार आत्मा के स्वरूप में भी विरोध नहीं है। अनेक होने पर भी एक के साथ और एक होने पर भी अनेक के साथ विरोध नहीं है। वस्तुदृष्टि से एक है और अवस्थादृष्टि से अनेक है। इसप्रकार वीतराग का शासन 'अपेक्षा' से समझाकर वस्तु को सिद्ध करता है और विरोध मिटा देता है।

द्रव्यदृष्टि से एक है और पर्यायदृष्टि से अनेक है-ऐसी परस्पर विरुद्धता होने पर भी वस्तु में विरोध मिटाने की यह दृष्टि शास्त्र प्रदान करते हैं।

यदि वस्तु सर्वथा एकरूप ही हो तो उसमें जानना देखना, श्रद्धा करना, आनन्द प्रकट करना ऐसी अनेकरूपता नहीं हो सकती और यदि वस्तु सर्वथा अनेकरूप ही हो तो एकरूप आनन्दकन्द का अनुभव न हो। एक बिना अनेकता नहीं हो सकती। एक बिना अनेकदशा प्रकट नहीं होती और अनेक न माने तो प्रकट अनेक दशाओं की नास्ति हो जाये।

यह मार्ग बहुत सूक्ष्म है परन्तु ज्ञान में समाये वैसा है, सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ मार्ग है; परन्तु कभी उस जाति का प्रयत्न किया ही नहीं।

'जामें स्याद्वाद नाम लच्छन सुहायो है।' -वीतराग का आगम स्याद्वाद लक्षण से सुशोभित है, स्याद्वाद से ही वीतराग का आगम पहिचाना जा सकता है; क्योंकि स्याद्वाद आगम का लक्षण है। स्यात् अर्थात् कथंचित, वाद अर्थात् कहना। वस्तु कथंचित नित्य है, कथंचित अनित्य है अथवा तो द्रव्य अपेक्षा से नित्य है, पर्याय अपेक्षा से अनित्य है। वस्तु अपेक्षा से एक है, अवस्थादृष्टि से अनेक है। इसप्रकार कथंचित अपेक्षा से जिनागम वस्तु का स्वरूप जैसा है वैसा बताता है।

यह समझना कठिन है अत: इसमे उपयोग को बराबर लगाना। बाहर में तो किसी की होशियारी कोई काम नहीं आती।

प्रश्न:– विवेक से तो काम होता है न! कौन सी वस्तु किसे देना या नहीं देना– यह सब विवेक से होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री:– जड़ के परमाणुओं का आना–जाना उनके अपने से होता है, आत्मा के कारण से नहीं। परमाणु को परिवर्तित करने का भाव अज्ञान है। जड़ तो स्वतंत्र वस्तु है, वह कोई जीव के आधीन नहीं है। जीव के स्वरूप में विकल्प ही नहीं है, वहाँ लेने–देने की वृत्ति कहाँ उठावे? मन में विचार करे कि यह माल इसको देना है; इस मार्ग से, इस वाहन से भेजना है; परन्तु यह कोई कार्य आत्मा से नहीं होता।

प्रश्न:– तो यह सब खोटा है? स्वप्न है?

पूज्य गुरुदेवश्री:– स्वप्न नहीं। वस्तु का आना–जाना होता है; परन्तु वह जीव के विकल्प से नहीं होता, वस्तु की स्वयं की योग्यता से होता है। भाषा की क्रिया भी जड़ से होती है, जीव नहीं बोल सकता। मृत्यु के समय मनुष्य की बहुत इच्छा होती है कि लाख–दो लाख का दान बोलता जाऊँ; परन्तु जीभ ही काम नहीं करती हो तो जीव क्या कर सकता है? ख्याल में आवे कि बोलना चाहता हूँ, परन्तु बोल नहीं सकता। जड़ का कार्य चेतन कैसे कर सकता है? जड़ को चलना हो तो चलता है।

इस नाटक समयसार के कर्त्ता बनारसीदासजी के भी ऐसा ही बनाव बना था। मृत्यु के समय भाषा बंद हो गई थी, किन्तु जीव के देह छोड़ने में समय लगा तो लोग बातें करने लगे कि पण्डितजी का जीव कहीं भटक रहा है। जब तक घर के सभी परिवारजन हाजिर नहीं होंगे, दौलत की पोटली साथ नहीं रखेंगे तब तक मोह नहीं टूटेगा। वास्तव में कविवर तो अपने ध्यान में थे, उन्हें कहीं मोह नहीं था; परन्तु आयुष्य की डोर थोड़े ही तोड़ सकते हैं? लोक की मूर्खता को कविवर सहन नहीं कर सके। उन्हें लोगों की मूढ़ता का निवारण करने की इच्छा हुई, इशारे से पेन और पेपर मँगाया और छन्द लिखकर दे दिये, जिन्हें पढ़कर लोगों को अपनी भूल का ज्ञान हुआ और

कविवर को महान् धर्मात्मा समझकर वैयावृत्य करने लगे। कविवर द्वारा लिखा गया छन्द यह है–

ज्ञान कुतक्का हाथ मारि अरि मोहना,
प्रकट्यो रूप स्वरूप, अनन्त सुसोहना।
जा परजै को अन्त सत्य कर मानना,
चले बनारसीदास फेर नहीं आवना।।

मैं रागरूपी बैरी को ज्ञानरूपी तलवार से मारकर बैठा हूँ। मैं तो सत्चिदानन्द आत्मा हूँ और मुझे अन्तर में आनन्द प्रकट है, वह मेरी शोभा है। अब इस देह की पर्याय का अन्त आया है। बनारसीदास (स्वयं) जाते हैं, फिर से यहाँ आना नहीं है।

यहाँ भी एक मुमुक्ष भाई का शरीर एकदम जीर्ण हो गया, मृत्यू शैय्या पर पड़े थे; पर प्राण निकलने में समय लगा तो लोग कल्पना करने लगे कि पुत्र मोह में जीव अटका हुआ लगता है; तब उन्होंने कह दिया– मुझे कहीं मोह नहीं है, अपने विचार में हूँ, मुझे कुछ सुनाओ मत..परन्तु लोगों ने तो अपनी रीति से सहजानन्दी..सुनाया। उन्होंने जीवन में बहुत वाचन–विचार किया था और उस समय भी अपने विचारपूर्वक देह छोड़ दी।

भाई! वाणी तो जड़ है। भाषा बंद होने के काल में बंद होती है और बोलने के काल में बोला जाता है, आत्मा नहीं बोलता। जड़ के परमाणु स्वतंत्ररूप से भाषारूप परिणमते हैं, जीव उसमें निमित्त है; परन्तु जीव बोलता नहीं। वीतराग का शासन जड़–चेतन पदार्थ की सिद्धि करके, जड़ की अवस्था जड़ से और चेतन की अवस्था चेतन से होती है– ऐसा समझाता है। जीव की अवस्था में जड़ नहीं और जड़ की अवस्था में जीव नहीं – ऐसा स्पष्टीकरण वीतराग शासन में ही है।

'स्याद्वाद नाम लक्षण सुहायो है'– अपेक्षा से कथन को समझना चाहिए। आत्मा बोलता है, चलता है यह तो निमित्त का कथन है। वस्तुतः आत्मा बोलता या चलता नहीं है। आत्मा तो मात्र जानता है अथवा विकल्प करके चार गतियों में भटकता है। अरे! मुझे यह कहना था और रह गया,

भाषा बंद हो गई –ऐसा अज्ञानी को होता है। ज्ञानी तो जानते हैं कि मेरे कुछ नहीं रहा, मेरे कुछ कहना भी नहीं और सुनना भी नहीं। मैं तो जाननहार आनन्दकन्द आत्मा हूँ।

'दरसनमोह जाको गयौ है सहजरूप' –जिसे अन्तर में आनन्दस्वरूप आत्मा का भान हुआ है उसके भ्रान्ति का नाश हुआ है। पहले तो एकान्तदृष्टि थी कि मैं एक हूँ अथवा अनेक ही हूँ। राग का कर्ता हूँ, शरीर की क्रिया को करता हूँ –ऐसी भ्रान्ति का नाश हुआ है। जिसके दर्शनमोह का नाश हुआ है, उसके हृदय में सहजभाव से यह प्रामाणिक जिनशासन प्रवेश करता है। सर्वज्ञ की वाणी में किस अपेक्षा से कथन है, वह ज्ञानी के हृदय में आ जाता है। उसे भ्रान्ति नहीं होती कि सर्वज्ञ की वाणी में ऐसा कैसे कहा होगा ?

सर्वज्ञ परमात्मा ने जो शास्त्र कहे हैं वे शास्त्र ज्ञानी के हृदय में प्रमाणता को पाते हैं, उसमें भ्रान्ति नहीं होती है, जैसी है, वैसा भाव बैठ जाता है। वस्तुदृष्टि से आत्मा एक है, अवस्थादृष्टि से अनेक है। वस्तुदृष्टि से शुद्ध है, अवस्थादृष्टि से अशुद्ध है –ऐसी भ्रान्ति रहित श्रद्धा हो जाती है।

अनैं सों अखण्डित अर्थात् कुनय से वस्तु का खण्डन नहीं हो सकता। कोई आत्मा को एकान्त से एक मानें या अनेक मानें, उससे वस्तु का खण्डन नहीं होता या वस्तु में विरोध नहीं आता।

अनूतन– भगवान आत्मा नया नहीं है, अनादि का है..है..है..। आत्मा नया उत्पन्न नहीं होता। इस भव के पूर्व अन्य भव में था, उससे पूर्व अन्य में– ऐसा अनादि से भव होते आये हैं, परन्तु आत्मा तो अनादि से ऐसा का ऐसा ही है। **अनन्त तेज**–आत्मा का तेज अनन्त है। उसमें ज्ञान और आनन्द का अनन्त तेज रहता है। आत्मा नित्य अनादि–अनन्त तेजस्वरूप है। ज्ञान का तेज अर्थात् जाननहार..जाननहार, सबका जाननहार है। राग हो उसे भी जाने और शरीर की क्रिया को भी जाने– सबको जाने– ऐसा तेज है। आत्मा नित्य अनादि–अनन्त प्रकाश स्वरूप है।

जिनको शास्त्र के कहे अनुसार आत्मा का स्वरूप जम गया है कि मैं तो त्रिकाल आनन्दमूर्ति हूँ, रागादि हैं, परन्तु वे मेरा स्वरूप नहीं; और कर्म आदि

भी हैं, वे उसके स्वरूप में हैं, मेरे में नहीं- इसप्रकार जिसको अन्दर में श्रद्धा हो गई है, उसका कुनय से खण्डन नहीं होता; क्योंकि कुतर्क से खण्डित हो, तत्त्व ऐसा नहीं है।

'ऐसा पद पूरन तुरंत तिनि पायो है'- अर्थात् जिसको अन्दर में सहजानन्द आनन्दकन्द प्रभु की दृष्टि प्रकट हुई है, उसको अल्पकाल में पूरन-मोक्षपद प्राप्त होता है। अक्षीण यानी नाश को प्राप्त न हो- ऐसा मोक्ष उसको अल्पकाल में होता है। इतना ही इसको करना है- अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान से भरी हुई वस्तु का अन्तर में अनुभव करना और राग के अनुभव को दृष्टि में से छोड़ देना। ऐसे आत्मा के अनुभव से धर्म प्राप्त करके पूर्ण मोक्षपद को प्राप्त होता है, उसके फिर संसार परिभ्रमण नहीं रहता।

इसप्रकार यह चौथे कलश की टीका रूप पाँचवाँ काव्य हुआ। क्रमशः

मङ्गलायतन के सम्बन्ध में जानकारी

फार्म नं० 4, नियम नं० 8

पत्रिका का नाम	: ***मङ्गलायतन*** (हिन्दी)
प्रकाशन अवधि	: मासिक
प्रकाशक का नाम	: पवन जैन (भारतीय)
पता	: 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश)
सम्पादक का नाम	: डॉ. सचिन्द्रकुमार जैन (भारतीय)
पता	: उपरोक्त
मुद्रक का नाम	: पवन जैन (भारतीय)
पता	: उपरोक्त
मुद्रण का स्थान	: ***मङ्गलायतन*** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़- 202001
स्वामित्व	: पवन जैन, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उ.प्र.)

मैं पवन जैन एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपुर्यक्त विवरण सत्य हैं।

पवन जैन

दिनाङ्क : 01.04.2021 प्रकाशक

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री शुभचन्द्रदेव

एक ओर 'परम अध्यात्म तरंगिणी' ग्रंथ के रचनाकार, श्री शुभचन्द्राचार्यदेव ने आचार्य अमृतचन्द्रसूरि के आध्यात्मग्रंथ समयसार कलश की टीका रचकर रत्नों से मढ़ दिया तथा दूसरी ओर प्रचुर वैराग्य से तर-बतर ज्ञानार्णव रचकर अपने भाई भर्तृहरि को ऐसा वैराग्यवंत बना दिया, कि जिससे वे भगवती जिनदीक्षा धारण कर वैदिकधर्म के बाह्य क्रियाकांड छोड़ आत्मा के ज्ञान-ध्यान में जुट गये।

आप किस संघ या गण, गच्छ के थे या आपकी गुरु परम्परा क्या थी, उसकी कोई भी जानकारी प्राप्त नहीं होती है। शुभचन्द्र तथा भर्तृहरि मालवानरेश अर्थात् उज्जयिनी के राजा सिन्धुराज के पुत्र थे।

एक प्रसिद्ध कथानुसार महाराजा सिंह को बहुत समय तक सन्तान न हुई, जिससे वह चिन्तित रहने लगा। एक दिन मन्त्री ने राजा की चिन्ता को अवगत कर, उसे धर्माराधन करने का परामर्श दिया। राजा सावधान होकर धर्मकृत्यों को सम्पन्न करने लगा।

एक दिन राजा व रानी अपने मन्त्रियों के साथ वनक्रीड़ा के लिए गये और वहाँ मूंज के खेत में पड़े हुए एक बालक को पाया। उस बालक को देखते ही राजा के हृदय में प्रेम का संचार हुआ और उसने उसे उठा लिया तथा लाकर रानी को दे दिया। रानी उस पुत्र को गोद में बिठाकर अत्यधिक प्रसन्न हुई। मंत्री ने राजा से निवेदन किया, कि नगर में चलकर रानी को गूढ़गर्भवती घोषित किया जाये और पुत्रोत्सव मनाया जाये। मंत्री के परामर्श के अनुसार राजा ने पुत्रोत्सव सम्पन्न किया। राजा सिंह ने उस पुत्र का नाम मुंज रखा। मुंज ने वयस्क होकर थोड़े ही दिनों में सकल शास्त्र और कलाओं का अध्ययन कर लिया। तदन्तर महाराज ने रत्नावती नामक कन्या के साथ विवाह कर दिया।

कुछ दिनों के अनन्तर महाराज सिंह की रानी ने गर्भ धारण किया और दसवें महीने में एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम सिंहल (सिन्धुराज) रखा गया। इस पुत्र का भी जन्मोत्सव सम्पन्न किया गया तथा वयस्क होने पर मृगावती

नामक राजकन्या से विवाह कर दिया गया। मृगावती कुछ दिनों में हुई। शुभ मुहूर्त उसने दो पुत्रों को जन्म दिया, जिनमें ज्येष्ठ का नाम शुभचन्द्र और कनिष्ठ का नाम भर्तृहरि रखा गया।

बचपन से ही इन बालकों का चित्त तत्त्वज्ञान की ओर विशेषरूप से आकृष्ट था। अतएव वय प्राप्त होने पर तत्त्वज्ञान में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। एक दिन मेघों के पटल को परिवर्तित होते हुए देखकर राजा सिंह को वैराग्य हो गया और उसने मुंज और सिंहल को राजनीति सम्बन्धी शिक्षा देकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। राजा मुंज अपने भाई के साथ सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

एक दिन मुंज वनक्रीड़ा से लौट रहा था, कि उसने मार्ग में एक तेली को कन्धे पर कुदाल रखे खड़े देखा, उसे गर्वोन्मत्त देखकर मुंज ने पूछा—इस तरह क्यों खड़े हो ? उसने कहा कि, मैंने एक अपूर्व विद्या सिद्ध की है, जिसके प्रभाव से मुझमें इतनी शक्ति है, कि मुझे कोई परास्त नहीं कर सकता। यदि आपको विश्वास न हो, तो अपने किसी सामन्त को मेरे इस लौहदण्ड को उखाड़ने का आदेश दीजिए। इतना कहकर लौहदण्ड को भूमि में गाड़ दिया। संकेत पाते ही सभी सामन्त उस लौहदण्ड को उखाड़ने में प्रवृत्त हुए, पर किसी से भी न उखड़ सका। सामन्तों की इस असमर्थता को देखकर, शुभचन्द्र और भर्तृहरि ने मुंज से निवेदन किया, कि यदि आदेश हो तो हम दोनों इस लौहदण्ड को उखाड़ सकते हैं। मुंज ने उन दोनों बालकों को समझाया, पर जब अधिक आग्रह देखा तो उसने लौहदण्ड उखाड़ने का आदेश दे दिया। उन दोनों ने बालों की चोटी का फन्दा लगाकर देखते-देखते एक ही झटके में लौहदण्ड को निकाल फैंका। चारों ओर से धन्य-धन्य की ध्वनि गूँज उठी। तेली निर्मद होकर अपने घर चला गया।

बालकों के इस अपूर्व बल को देखकर मुंज आश्चर्यचकित हो गया और वह सोचने लगा, कि ये बालक अपूर्व शक्तिशाली हैं और जब ये बड़े हो जायेंगे तो किसी भी क्षण मुझे राज-सिंहासन से च्युत कर देंगे। अतएव इनको किसी उपाय से मृत्यु के मुख में पहुँचा देना ही राजनीतिज्ञता है। उसने मंत्री को बुलाकर अपने विचार प्रकट किए और कहा, कि शीघ्र ही उन दोनों का वध हो जाना चाहिए। मंत्री ने राजा को पूर्णतया समझाने का प्रयास किया, पर मुँज को मंत्री की बातें अच्छी नहीं लगीं। फलत: मंत्री राजाज्ञा स्वीकर कर चला गया।

मंत्री ने एकान्त में बैठकर उहापोह किया और अन्त में वह निष्कर्ष पर पहुँचा, कि कुमारों को इस समाचार से अवगत कर देना चाहिए, अन्यथा बड़ा भारी अनर्थ हो जायेगा। उसने शुभचन्द्र और भर्तृहरि को एकान्त में बुलाया और राजा के निन्द्य विचार कह सुनाये। साथ ही यह भी कहा, कि आप लोग उज्जयिनी नगरी छोड़कर चले जाइये, अन्यथा प्राणरक्षा नहीं हो सकेगी।

राजकुमार अपने पिता सिंहल के पास गये और राजा मुँज की गुप्त मंत्रणा प्रकट कर दी। सिंहल को मुँज की नीचता पर बड़ा क्रोध आया और उसने पुत्रों से कहा, मुँज द्वारा षड्यंत्र पूरा करने से पहले तुम उसे यमराज के यहाँ पहुँचा दो। कुमारों ने बहुत विचार किया और वे संसार से विरक्त हो वन की ओर चल पड़े।

महामति शुभचन्द्र किसी वन में जाकर मुनिराज के समक्ष दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली और तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करते हुए घोर तपश्चरण करने लगे; पर भर्तृहरि एक कौल तपस्वी के निकट जाकर उसकी सेवा में संलग्न हो गया। उसने जटाएँ बढ़ा ली, कमंडलु, चिमटा लेकर, कन्दमूल भक्षण द्वारा उदरपोषण करने लगा। बारह वर्ष तक भर्तृहरि ने अनेक विद्याओं की साधना की। उसने योगों द्वारा शतविद्या और रसतुम्बी प्राप्त की । उस रस के संसर्ग से तांबा सुवर्ण हो जाता था। भर्तृहरि ने स्वतंत्र स्थान में रसतुम्बी के प्रभाव से अपना महत्त्व प्रकट किया।

एक दिन भर्तृहरि को चिन्ता हुई, कि उसका भाई शुभचन्द्र किस स्थिति में है ? अत: उसने अपने एक शिष्य को उसका समाचार जानने के लिए भेजा। शिष्य जंगलों में घूमता हुआ उस स्थान पर आया, जहाँ आचार्य शुभचन्द्र तपश्चर्या कर रहे थे। उसने देखा, कि उनके शरीर पर अंगुल भर भी वस्त्र नहीं है । कमण्डलु और पीछी के अतिरिक्त अन्य कुछ भी परिग्रह नहीं है। शिष्य दो दिन निवास कर वहाँ से लौट आया और भर्तृहरि को समस्त समाचार आकर सुनाया। भर्तृहरि ने अपनी तुंबी का आधा रस दूसरी तुंबी में निकालकर शिष्य को दिया और कहा, कि इसे ले जाकर शुभचन्द्र को दे आओ, जिससे उसकी दरिद्रता दूर हो जाय, और सुखपूर्वक अपना जीवन यापन करे। जब शिष्य रसतुंबी लेकर मुनिराज के समक्ष पहुँचा, तो उन्होंने उसे पत्थर की शिला पर डाल दिया।

शिष्य ने वापस लौटकर भर्तृहरि को रसतुंबी की घटना सुनायी, फिर भी वे स्वयं भाई की ममतावश शेष रसतुंबी को लेकर आचार्य शुभचन्द्र के निकट आये। शुभचन्द्र शेष रस को भी पाषाणषिला पर डाल दिया, जिससे भर्तृहरि को बहुत दु:ख हुआ। आचार्य शुभचन्द्र ने भर्तृहरि को समझाते हुए कहा—भाई, यदि सोना बनाना अभिष्ट था, तो घर क्यों छोड़ा? घर में क्या सोना-चाँदी, मणि-माणिक्य की कमी थी? इन वस्तुओं प्राप्ति तो गृहस्थी में सुलभ थी। अत: सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए इतना प्रयास करना व्यर्थ है।

आचार्य शुभचन्द्र के उपदेश से भर्तृहरि भी दीक्षित हो गया। भतृहरि को मुनिमार्ग में दृढ़ करने और सच्चे योग का ज्ञान कराने के लिए आचार्य शुभचन्द्र ने 'योगप्रदीप' तथा 'ज्ञानार्णव' की रचना की।

आपने अपने ग्रंथ में आचार्य समन्तभद्रजी, पूज्यपादस्वामी, आचार्य अकलंकस्वामी, आचार्य जिनसेनस्वामी, आचार्य सोमचन्द्रदेव, आचार्य अमृतचन्द्रसूरि आदि कई आचार्यों के आगमों का आधार दिया है। इससे ज्ञात होता है, कि आप बहुश्रुताभ्यासी थे।

आपके ज्ञानार्णव ग्रंथ का आपके पश्चात्वर्ती दिगम्बर आचार्यों ने ही नहीं, परन्तु श्वेताम्बर आचार्य हेमचन्द्रजी ने अपने ग्रंथ में भरपूर उपयोग किया है। जिससे ज्ञात होता है, कि आपकी रचना अतिप्रिय बनी है। यह वैराग्य का अनुपम ग्रंथ है। यह एक महाकाव्यसमा ग्रंथ है। आपने परम अध्यात्मतरंगिणी, ज्ञानार्णव व योगप्रदीप नामक ग्रंथों की रचना की है।

आपका समय ई. स. 1003-1068 प्रतीत होता है।

'ज्ञानार्णव' के रचयिता आचार्य शुभचंद्रदेव भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

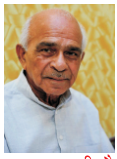
पण्डित प्रकाशजी मैनपुरी

ध्यान देवें :

ज्योतिर्विदद्वय पण्डित प्रकाशजी मैनपुरी

श्री अनुज जैन, प्रकाश ज्योतिष केन्द्र, अलीगंज

सम्पर्क : 9837713598

श्री अनुज जैन

सभी भाईयों से निवेदन है कि आदरणीय प्रकाशदादा की अस्वस्थता में उनके सुयोग्य शिष्य **श्री अनुज जैन** से ज्योतिष, मुहूर्त सम्बन्धी कार्य के लिए सम्पर्क करें।

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम चिदायतन में लघु समयसार विधान सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम चिदायतन : कहान समयसार सम्प्राप्ति शताब्दी वर्ष के कार्यक्रमों की शृंखला में दिनांक 21 फरवरी 2021 दिन रविवार को तीर्थधाम चिदायतन हस्तिनापुर में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल द्वारा रचित लघु समयसार विधान का आयोजन किया गया।

इसमें पण्डित अशोक लुहाड़िया, डॉ. मनीष शास्त्री मेरठ ने समयसार का सार समझाया एवं पण्डित निखिल शास्त्री मेरठ द्वारा अपनी मधुर वाणी के द्वारा विधान सम्पन्न कराया गया।

विधान का आयोजन श्री श्रेयांसकुमार दिव्यांशकुमार जैन द्वारा प्रिय नितिन की स्मृति में किया गया और शताधिक साधर्मियों ने पूजन-विधान में हर्षोल्लास पूर्वक सम्मिलित होकर धर्म लाभ लिया।

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रथम बार, प्रथम श्रुत स्कन्ध **'षट्खण्डागम धवला टीका सहित'** वाचना का कार्यक्रम, मार्गशीर्ष पंचमी, शनिवार 5 दिसम्बर 2020 से अनवरत प्रारम्भ है।

विद्वत् समागम - विदुषी बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं स्थानीय विद्वान पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सचिन्द्र शास्त्री का लाभ प्राप्त होता है।

दोपहर - 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)

सायंकाल 07.30 से 09.00 बजे तक मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - 1008
के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

वैराग्य-समाचार

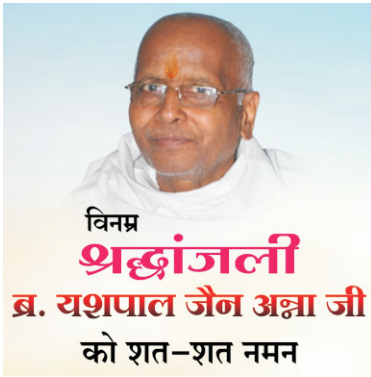

तीर्थधाम मङ्गलायतन : सरल स्वभावी, अनुशासनप्रिय दक्षिण भारत और महाराष्ट्र प्रान्त में पूज्य गुरुदेवश्री के द्वारा प्राप्त तत्त्वज्ञान को जन-जन तक पहुँचानेवाले सबके हृदयहार उत्तर भारत में करणानुयोग के गूढ़ विषय गुणस्थान विवेचन को जन-जन की चर्चा का विषय बनानेवाले, स्वाध्याय एवं कण्ठपाठ की सतत् प्रेरणा देनेवाले तत्त्वज्ञान को समर्पित प्रेरणास्रोत और समस्त संस्थाओं के विद्यार्थियों के प्रति वात्सल्य रखनेवाले **आदरणीय ब्रह्मचारी यशपाल जैन 'अन्नाजी'** का देहविलय 5 मार्च 2021 को शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया।

उसके उपलक्ष्य में तीर्थधाम मङ्गलायतन में भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों के समक्ष सायंकाल 6 बजे श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। जिसमें पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री आदि ने अन्नाजी के द्वारा जीवन भर किये गये तत्त्वप्रचार की उपलब्धियों को एवं उनके द्वारा बतलाये गये मार्ग को मङ्गलार्थियों के समक्ष रखा। उनकी स्मृति के रूप में तथा **आगामी 'कहान समयसार सम्प्राप्ति वर्ष' के अन्तर्गत समस्त मङ्गलार्थियों ने समयसार गाथा, पद्यानुवाद, समयसार कलश पद्यानुवाद आदि विषयों को कण्ठपाठ करने की पावन भावना भाकर ब्रह्मचारी यशपालजी को श्रद्धांजलि समर्पित की।**

रात्रि में मूलाचारजी वाचना के समय ब्रह्मचारी कल्पनाबेन के द्वारा भी ब्रह्मचारी यशपालजी के प्रति श्रद्धांजलि व्यक्त की गयी।

सागर : श्रीमती मोहिनीजी मोदी का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया। आप श्री प्रमोदकुमार मोदी की धर्मपत्नी एवं श्री अविनाश मोदी की मातुश्री थीं। आप, मङ्गलार्थी आशुतोष मोदी की बड़ी मम्मी थीं।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रन्थ सेट

संक्षिप्त परिचय

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी के त्रिशताब्दी जन्मजयन्ती के पावन अवसर पर, उनकी अनुपम कृति '**मोक्षमार्गप्रकाशक**', उसी के आधार पर '**श्री मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी**', '**श्री मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्तवैभव**' में समागत सारभूत दृष्टान्तों एवं सिद्धान्तों पर आधारित कृति प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। नवीन पाठकों को मूल ग्रन्थ के अध्ययन की प्रेरणा जागृत हो, इस उपलक्ष्य में सभी स्वाध्याय भवनों, मुमुक्षु संस्थाओं एवं प्रवचनकार विद्वानों को नि:शुल्क सप्रेम भेंट स्वरूप प्रदान किया जा रहा है।

मोक्षमार्गप्रकाशक – तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा द्वितीय बार आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुन: मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।

मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी – प्रस्तुत प्रश्नोत्तरमाला में प्रत्येक अधिकार के आधार पर हैडिंग के अनुसार प्रश्नोत्तर का विभाजन किया गया है। जहाँ-जहाँ विषयवस्तु की दृष्टि से गरिष्ठता लगी, वहाँ उन विषयों को विशेष स्पष्ट किया गया है।

मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्त वैभव – जिनागम में गहन सिद्धान्तों को सहज हृदयग्राह्य बनाने के पावन उद्देश्य से, सुगम दृष्टान्तों की परम्परा रही है। इन्हीं दृष्टान्त-सिद्धान्त के माध्यम से पण्डितप्रवर टोडरमलजी ने जनसामान्य को जिनागम के गूढ़ सिद्धान्त सरल रीति से समझाये हैं। ऐसे अनेक दृष्टान्तपूर्वक जिनागम के आधारभूत सिद्धान्तों को चित्रित करके कृति को रोचक बनाने का प्रयास किया गया है।

'मोक्षमार्गप्रकाशक', 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी', 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्तवैभव' का सेट

मँगाने का फार्म

नाम.....

.....

पता .....

.....

..... पिन कोड .....

संस्था / मन्दिर का नाम .....

.....

संस्था / मन्दिर के प्रमुख का नाम .....

.....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

आप, हमारे ग्रन्थमाला के सम्माननीय सदस्य हैं / नहीं .....

प्रतियों की संख्या .....

नोट - ग्रन्थ की उपलब्धता के अनुसार ही आपको भेंट किए जाएँगे। आप अपना फार्म भरकर ईमेल कर देवें।

हस्ताक्षर

. . . . . .

ग्रन्थ मँगाने का पता—

प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216 (हाथरस) उत्तरप्रदेश

सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)

Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

वैराग्य वर्षा

यदि मनुष्य अवतार प्राप्त करके भी आत्मा की पहिचान नहीं की तो इस अवतार की कोई विशेषता नहीं है। जिस प्रकार कच्चा चना कड़वा लगता है और उसे बो दिया जाए तो उगता है परन्तु उसे सेक दें तो मिठास आती है और वह फिर से उगता नहीं है। इसी प्रकार आत्मा, अज्ञानभाव से दु:खी है और नये-नये भव धारण कर रहा है परन्तु आत्मा की सच्ची पहचान करने से उसे सुख प्रगट होता है और फिर से भव धारण नहीं करना पड़ता।

यह मनुष्य देह, दुर्लभ है और इसमें भी आत्मा का भान करना तो महादुर्लभ है। बहुत से जीव, मनुष्यपना प्राप्त करके भी आत्मा को नहीं जानते और तीव्र लोलुपता से कौए-कीड़े-मकोड़े जैसा जीवन व्यतीत करते हैं। यहाँ कहते हैं कि हे भाई! मनुष्यपना पाकर तू अपने आत्मा को जान! आत्मस्वभाव ऐसा है कि ज्ञान से अनुभव किया जा सकता है परन्तु वाणी में नहीं आ सकता।

भाई! आत्मा को जाने बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आ सकता। आत्मा, जानने-देखनेवाला पदार्थ है; महिमावन्त भगवान है; वाणी, जड़-अचेतन है, उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता। तब आत्मा को जानने का उपाय क्या? यही कि स्वानुभव द्वारा वह ज्ञात होता है। लाखों-करोड़ों प्राणियों में कोई विरला प्राणी ही अन्तर में अनुभव करके आत्मा को जानता है। पुण्य से आत्मस्वरूप की पहचान नहीं होती, क्योंकि वह तो आत्मस्वरूप से बहिर्भाव है। आत्मतत्त्व, अन्तर्मुख स्वानुभव से ही ज्ञात होता है। करोड़ों जीवों में कोई विरले जीव ही स्वानुभव से जिस आत्मा को जानते हैं, वह आत्मस्वभाव इस जगत् में जयवन्त वर्तो।

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

जङ्गल में भी मुनिराज परम सुखी

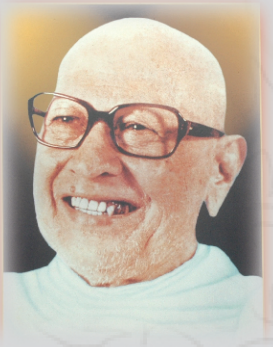

किसी को ऐसा लगे कि जङ्गल में मुनिराज को अकेले कैसे अच्छा लगता होगा? **अरे भाई! जङ्गल के बीच निजानन्द में झूलते मुनिराज तो परम सुखी हैं; जगत के राग-द्वेष का शोरगुल वहाँ नहीं है।** किसी परवस्तु के साथ आत्मा का मिलन ही नहीं है, इसलिए पर के सम्बन्ध बिना आत्मा स्वयमेव अकेला आप अपने में परम सुखी है। पर के सम्बन्ध में आत्मा को सुख हो —ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने ऐसे आत्मा का अनुभव करते हैं और उसी को उपादेय मानते हैं।

(- गुरुदेवश्री के वचनामृत, १७६, पृष्ठ १०९)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com